International Journal of Sanskrit Research 2015; 1(7): 78-80

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2015; 1(7): 78-80
© 2015IJSR
www.sanskritjournal.com
Received: 20-09-2015
Accepted: 25-10-2015

डॉ. माधवी शर्मा
(प्राचार्य) डी. बी. (पी. जी.) महाविद्यालय, खेरली (अलवर)

वेदों में सौन्दर्य तत्व

डॉ. माधवी शर्मा

यूनानी शब्द 'एस्थेसिसि' से उदभूत अंग्रेजी 'एस्थेटिक' शब्द ही हिन्दी में सुन्दर है। 'सुन्दर' शब्द ही उत्पत्ति 'सु' उपसर्ग पूर्वक 'उन्द्' धातु में 'अतन' प्रत्यय से मिलकर हुई है, जिसका अर्थ है जो अन्तः सत्ता को भली भांति आर्द्र करें।

हमारी अन्तश्चेतना पर पडने वाला सुखकर प्रभाव ही सुन्दर है। शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध जब ज्ञानेन्द्रियों के माध्यम से हमारी अन्तश्चेतना को सुखमय प्रतीतियों से विभोर कर देते हैं, तब अन्तश्चेतना में सौन्दर्य की परिणति होती है।

सौन्दर्य की व्याप्ति परमाणु से ब्रह्माण्ड तक, स्थूल से सूक्ष्म तक, वस्तु से व्यक्ति तक, विषय से अभिव्यक्ति तक, अनुभूति से प्रतीति तक यहां तक कि क्षणिक से शाश्वत तक विद्यमान है। पाश्चात्य सौन्दर्य शास्त्रियों ने सौन्दर्य को समस्त कलाओं का प्राण तत्व माना है तो भारतीय चिन्तकों ने रस, ध्वनि, अलंकार, रीति, वक्रोक्ति तथा औचित्य के प्रकारान्तर से सौन्दर्य को ही शोभा, चारूता तथा ऋजुता के नाम से काव्य की आत्मा स्वीकार किया। [1]

सौन्दर्य को परिभाषाबद्ध करने वाले मनीषियों के दो निकाय है –

1. भाववादी निकाय।
2. भौतिकवादी निकाय।

भाववादी सौन्दर्य शास्त्रियों के अनुसार सौन्दर्य का सम्बन्ध मनुष्य की अन्तष्चेतना से है और उसका वस्तुगत आधार नहीं होता। इस मत के अनुसार सौन्दर्य दृष्य में नहीं दृष्टि में होता है।

भौतिकवादी सौन्दर्यशास्त्री मानते है कि सौन्दर्य कोई अलौकिक पदार्थ नहीं है, उसका सम्बन्ध एक और व्यक्ति से है तो दूसरी ओर वस्तु से है। सौन्दर्य की अनुभूति में आत्म परक तत्व का महत्व है। इस मत के अनुसार सुन्दर वस्तु अपने अस्तित्व के लिए व्यक्ति की अनुभूति पर निर्भर नहीं होती यह सौन्दर्य के वस्तुगत आधार पर अकाटय प्रमाण है। [2]

सौन्दर्य असीम है उसे किसी सीमा में निबद्ध नहीं किया जा सकता। किसी ने सौन्दर्य को आध्यात्मिक चष्में से देखा और किसी ने सामाजिकता और उपयोगिता रूपी चष्में से देखने की कोषिष की, कुछ ने रूपवादी व मूल्यवादी दृष्टि से सौन्दर्य को देखने की कोषिष की, किसी ने भौतिक से देखा – किन्तु समन्वित रूप से यह कहा जायेगा कि सौन्दर्य किसी एक स्थान पर न होकर वस्तु में, दर्षक में, ह्रदय में, दृष्टा में, सह्रदय में और संस्कार रूप में विद्यमान है। कल्पना की रमणीयता, बुद्धि और भावना के सामंजस्य और रस निष्पत्तिजन्य आनन्द में ही सौन्दर्य की सत्ता विद्यमान है।

सौन्दर्य एक भावात्मक संज्ञा है, इसका शब्दों (वाणी) के द्वारा प्रकटीकरण असंभव है। इसलिए केवल अनुभव ही किया जा सकता है, जो इसका अनुभव प्राप्त कर लेता है तो वह आनन्द के इस विषाल सागर में निमग्न हो जाता है जहां उसे केवल सौन्दर्य ही सौन्दर्य दृष्टिगोचर होता है। सौन्दर्य एक ऐसा तत्व है, जिसका दर्षन जैसे–जैसे किया जाता है वैसे वैसे इसकी चाह तीव्रतम होती चली जाती है। सौन्दर्य में कभी तृप्ति नहीं मिलती है।

1. सूर और तुलसी की सौन्दर्य भावना – डा. बद्री नारायण श्रोत्रिय।
2. नन्द किषोर नव – प्रेमचन्द का सौन्दर्यषास्त्र।

मानव की सच्ची अनुभूतियों से सम्पृक्त होने के कारण सौन्दर्य सत्य और षिव का स्वरूप होता है। आभास से ही सौन्दर्य की पुष्टि और विस्तार होता है और जब वह भावना का रूप धारण करता है, जो वह सुन्दर अनुभवगत है, सौन्दर्य प्रतीतगत है। काव्यगत सत्य शाष्वत होता है और वैज्ञानिक सत्य सिद्धान्तगत।

ब्ततमेचवदकमदबम
डॉ. माधवी शर्मा
(प्राचार्य) डी. बी. (पी. जी.) महाविद्यालय, खेरली (अलवर)

अनुराग का लाल रंग, भय का पीत वर्ण आदि सत्य के ही तो आधार हैं, जो कि विभिन्न सौन्दर्य रूपों में प्रकट होते है।

षिव सौन्दर्य का ही व्यावहारिक रूप है, षिव का मानव जीवन में महत्व अधिक है। षिव के द्वारा आनन्द की प्राप्ति होती है। यह आनन्द उसकी संवेदनाओं और व्यक्तित्व को समृद्ध करता है। षिव में व्याप्त विपुल सौन्दर्य से प्रेरणा प्राप्त कर कल्पना के द्वारा परिष्कार कर कलाकार आत्माभिव्यक्ति करता है, जो सौन्दर्यपूर्ण होने के कारण रमणीय होती है और रमणीयता के कारण आनन्ददायक है। अतः सौन्दर्य अन्तः करण, आन्तरिक अनुभूति की देन होती है। जिसमें भावों का उत्कर्ष और अनुभूति की गहनता होती है। इस प्रकार सत्य, षिव और सौन्दर्य एक ही वस्तु के तीन पक्ष होते है।

इस प्रकार सौन्दर्य नितनूतन है, रमणीय है, प्रतिक्षण आनन्द देने वाला है। सौन्दर्य व्यक्ति के तन–मन–प्राणों में अविरल बहने वाला है। वह भोक्ता के मानस में दिव्य रागिनी बन कर गूंजता है तथा हृदय में अपूर्व माधुरि का संचार कर सौन्दर्य की शाष्वत दीप षिखा को प्रज्जवलित करता है।

दार्षनिकों का मानना है कि आनन्द प्राप्ति ही मानव जीवन का अन्तिम ध्येय है जैसे योगी समाधि मे, साधक साधना में, भक्त भक्ति प्रक्रिया में तथा विचारक चिन्तन में ही आनन्द प्राप्ति का प्रयत्न करते है। इस आनन्द की चरम परिणति परमानन्द में होती है। सौन्दर्य का ज्ञान इन्द्रियों के द्वारा ही मन तक होता है अतः वह स्थूल है और इसका क्षण–क्षण परिवर्तनषील रूप ही सौन्दर्य की कसौटी है।

काव्य के मध्य स्थित आकर्षण शक्ति ही सौन्दर्य है। इस प्रकार काव्य साहित्य तथा समस्त ललित कलाओं का मूलाधार सौन्दर्य है। सौन्दर्य समस्त कलाओं का सर्वस्व है। किसी वस्तु के प्रति आर्कषण या विकर्षण होने पर हम उसे सुन्दर या असुन्दर कहते है। आर्कषक और सुन्दर वस्तु का सान्निध्य आनन्ददायी होता है।

आकर्षण सृष्टि संचालन की प्रमुख शक्ति है जिसे दर्षन साहित्य में आत्मा कहा जाता है। विज्ञान के संदर्भ में वही शक्ति है। मनोविज्ञान में शक्ति को सारतत्व माना गया है। भौतिक विज्ञान की दृष्टि से प्रत्येक अणु में अमिट् 'षक्ति' का निवास है। एक प्रकार से वस्तु शक्ति का ही प्रतिरूप है, साथ ही वस्तु या द्रव्य के प्रत्येक अंष को शक्ति के रूप में परिणित किया जा सकता है। इस प्रकार आज शक्तिवाद की स्थापना हो गई है। अतः साहित्य की शक्ति ही सौन्दर्य है और यही साहित्य की आत्मा है।

काव्य के मध्य स्थित आर्कषण शक्ति ही सौन्दर्य है। भिन्न–भिन्न साधक उपकरणों के द्वारा इस शक्ति को सिद्ध किया जा सकता है। सौन्दर्य को आकर्षण शक्ति का समानार्थक माना जा सकता है। क्योंकि मन अपनी समस्त चित्तवृत्तियों के साथ इस सौन्दर्य शक्ति के द्वारा आकर्षित होता है और आनन्द का उपभोग करता है।

'नासदा सिन्नों सदासि'' दानी नासी द्र ओनो व्योमा परो यत्। कि मावरोव कुहक्स्य शर्मन्न म्भः कि सासी गहन गम्भिरम्।। [1]

जब असत् नहीं था, सत् नहीं था, पृथ्वी, आकाष आदि कुछ भी नहीं था, ब्रह्माण्ड भी नही था, अमृतत्व, मृतत्व भी नहीं था। तब वायु आदि से निरवलम्ब, आत्म प्रकाष से युक्त एक मात्र ब्रह्म ही था। ब्रह्म रूपी पूर्ण सौन्दर्य का बिम्ब ही मानव प्रतिबिम्ब बनकर चमक उठता है और सृष्टि के दर्पण में अनेकों (असंख्यों) सौंदर्य कण बिखेर देते है। धरा जीवंत हो उठती है। उस परम रहस्यमयी प्रेममयी लीला का परिणाम ही यह विष्व है।

वेद शब्द का अर्थ है ज्ञान – सर्वात्कृष्ट ज्ञान अर्थात् पवित्र धार्मिक ज्ञान। वेद एक ग्रन्थ में बद्ध साहित्यक कृति नहीं हैं। वेद एक विषाल साहित्य राषि का नाम है जिसका सृजन अनेक शताब्दियों में हुआ और जो अनेक शताब्दियों तक पीढी दर पीढी मौखिक रूप से संक्रान्त होता होता रहा है तथा प्रागैतिहासिक काल में किसी परवर्ती पीढी के द्वारा अपनी पुरातनता तथा विषयवस्तु की उदारता के कारण 'पवित्र ज्ञान' व 'ईष्वरीय ज्ञान' के रूप में प्रतिष्ठित किया गया।

आज जिसे वेद कहते है उसमें तीन वर्ग सम्मिलित हैं :

1. **संहिताएं (संग्रह)** सूक्तों प्रार्थनाओं, स्तुतिओं, कर्मकाण्डीय, विधिमंत्रों तथा गीतों का संग्रह
2. **ब्राह्मण ग्रन्थ** विषाल काय गद्य साहित्य। इसमें धर्म विधान सामग्री है, विषेषतः यज्ञ तथा पृथक् पृथक् यज्ञीय कर्मकाण्डों का विचार है।
3. **आरण्यक ग्रन्थ** (अरण्य संबंधी ग्रंथ) तथा उपनिषद् (निगूढ सिद्धान्त) – ये अंषतः ब्राह्मण ग्रन्थों के भाग रूप में या उनसे संबद्ध है तथा अंषतः स्वतंत्र ग्रंथ हैं। इसमें अरण्यवासी, सन्यासियों व तपस्वियों द्वारा ईष्वर तथा मनुष्यों विषयक ज्ञान है। इसमें भारतीय दर्षन की भी सामग्री है।
4. **ऋग्वेद** यह सबसे पुराना वेद है। इसमें 10 मंडल और 10552 मंत्र ऋग्वेद की ऋचाओं में देवताओं की प्रार्थनाएं और स्तुतियां है।

   ऋग्वेद – 10.11.109
5. **यजुर्वेद** इसमें 1975 मंत्र और 40 अध्याय है। इस वेद में अधिकांषतः यज्ञ के मंत्र है।
6. **समवेद** इसमें 1875 मंत्र है। इस संहिता के सभी मंत्र संगीतमय हैं, गेय है।
7. **अथर्ववेद** इसमें 5987 मंत्र और 20 कांड हैं। इसमें ऋग्वेद की बहुत सी ऋचाये हैं। चारों वेदों में कुल 20389 मंत्र हैं।

मानवता के आदिकाल से ही उसने अपने संस्कारवृत्ति तथा रूचि के अनुसार विष्व में सर्वत्र विकीर्ण सुन्दरम् का साक्षात्कार किया होगा और उसके अनुभव से उसकी हृदयतन्त्री के तारों में मधुर अनुराग उत्पन्न हुआ होगा और उनसे अपनी सौन्दर्यानुभूति को अभिव्यक्ति देने का प्रयास किया होगा। यह परम्परा आज भी अविच्छन्न रूप से चली आ रही है। ऋग्वेद में कवि को 'ऋषि' 'मुनि' 'विप्र' आदि अभिधाओं से अभिहित किया गया है और सभी अवस्थाओं में उससे ऐसे संवेदनषील व्यक्ति का बोध किया गया है जो किसी आंतरिक प्रेरणा अथवा आंतरिक प्रफुल्लता अथवा उल्लास की भावना से अभिभूत है।

ऋग्वेद में भी कवि के अभ्यान्तर प्रेरणा से प्रसूत अभिव्यक्ति के लिये 'मंत्र' शब्द प्रयुक्त हुआ है।

महर्षि विष्वामित्र ने हृदय में स्फुरित होने वाली ज्योति (अन्तः प्रेरणा) को ही व्याति अर्थात् ऋचा का आधार बताया है।

ऋग्वेद के ऋषि अपनी आंतरिक स्फुरणाओं से शासित होकर सौंदर्य का दर्षन तथा उसकी अभिव्यक्ति करते थे। प्रो. जी. एस. शास्त्री ने आंग्ल रोमांटिक समीक्षक बाल्टर पेंटर की रोमांटिक काव्यानुभूति विषयक स्थापना का उल्लेख करते हुए कहा है कि ''ऋग्वेद के कवि सर्वत्र सौंदर्य की तलाष करते और पाते थे। उन्हे समर्पण गोचर जगत चिरन्तन भाव से नवीन एवं ताजा प्रतिभाषित होता था। यही वैदिक ऋषियों से उद्योतित होता है जिसमें सौंदर्य को एक अपरिचित वैचित्र्य से संयुक्त समझा गया है।

वैदिक साहित्य आर्यो के सौन्दर्य बोध का पहला प्रस्फुटन है। वैदिक ऋषियों ने अखिल सृष्टि के अनन्त रूप और ऐष्वर्य का भावन किया और उसे उदात्त शैली मे अभिव्यक्ति दी ।वैदिक मंत्रों में यत्र–तत्र बिखरा सौन्दर्य इस बात का स्पष्ट परिचायक है कि भारतीय चिन्तक प्राकृतिक और मानवीय सौन्दर्य से प्रभावित थे। वेद आर्य जाति के जीवन का विमल दर्पण है। ज्ञान कर्म और उपासना का उत्कृष्ट रूप हमें वेदों में मिलता है। वैदिक ऋचाओं के अन्तर्गत जिस पौरूष, उत्साह, दीप्ति का दर्षन होता है वह अन्यत्र दुलर्भ है। ऋग्वेद में सौन्दर्य के मधुर पक्ष का उषः सूक्त और उदात्त पक्ष का मरूत,पुरूष, विष्णु और इन्द्र आदि से संबद्ध सूक्तो में चित्रण किया गया उपलब्ध होता है। सौन्दर्य की भावनाओं की अभिव्यक्ति यहां धार्मिक भावनाओं से समन्वित होकर हुई है। वेदो मे ऊँ, सु, सोम, स्वस्ति आदि प्रतीकों का जो प्रयोग हुआ है उसके मूल में उच्चकोटि की सौन्दर्य मीमांसा छिपी हुई है। वेदों में सौन्दर्य तत्व को स्वास्ति कहा है और स्वस्तिमान होना मानव जीवन का एकमात्र लक्ष्य होता

है :–'कर्त्तः न स्वस्तिमतः'

यद्यपि वेदों में सौन्दर्य का पृथक सूक्त दृष्टिगोचर नहीं होता है किन्तु सौन्दर्य के विभिन्न प्रतीकों पर दृष्टि अवष्य पडती है, जो कि वैदिक ऋषियों के सौन्दर्य ज्ञान को स्पष्ट करते है। 'मन्त्र दृष्टा ऋषि का मन सौन्दर्य और उदात्त तत्व को गृहण करने के लिए सदा उत्सुक रहता था और उन्होंने उसका साक्षात्कार भी किया था। 'पिषेल' और 'ओल्डन वर्ग' जैस जर्मन विद्वानों ने भी ऋग्वेद में वर्णित सौन्दर्य के प्रतीकों का संकलन किया है। रूप, हिरण्य गर्भा, चारू, श्रेष्ठ, महनीय, प्रिय, कल्याण, अद्भुत आदि शब्दों के व्यवहार में सौन्दर्य बोध और मोद, आमोद, भुद प्रमुद, नंद, आनंद आदि के प्रयोग के पीछे सौन्दर्यानुभूति ही विद्यमान है।

इन सबसे स्पष्ट होता है कि वैदिककालीन ऋषियों की दृष्टि सौन्दर्यान्मुखी थी। ऋग्वेद की ऋचाओं में परामनोविज्ञान और मनोविज्ञान संबंधी सर्वोत्कृष्ट विचार उपलब्ध है। सौन्दर्य इन दोनों का विषय है।

सृष्टि के चारों ओर प्रसरित सौन्दर्य में सौन्दर्य नियन्ता को खोजते हुए पौराणिक युग के मनीषियों ने सौन्दर्य का दार्शनिक चिंतन किया है।

ऋग्वेद का काव्य सौन्दर्य अदभुत रोचक और हृदयग्राही है। वेदों की भाषा में उदात्त अनुदात्त और स्वरित स्वरों के कारण संगीतात्मकता है। ऋग्वेद के अनेक स्थलों में जैसे उषा सूक्त, यम–यमी संवाद, पाणि संवाद आदि में आह्लादक काव्यात्मक सौन्दर्य है। उषा सूक्त का मंत्र

अधि पेंषासि वपते नृतूरिवार्पोर्णुते वक्ष उस्रेव वजहम।
ज्योतिर्विष्वस्यै भुवनाय कृण्वती गावो न व्रजं व्युत्रा आंवर्तयः।।

नर्तकी के समान सजी हुई उषा अपने रूप को प्रकट करती है। जिस प्रकार गाये दुहने के समय अपने स्तन प्रकट करती हैं उसी प्रकार उषा भी अपना वक्ष प्रकट करती है। जिस प्रकार गायें शीघ्र ही व्रज में चली जाती है। ठीक उसी प्रकार उषा पूर्व दिषा में जाकर सारे विष्व को अपने प्रकाष से आलोकित करती है।

हा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजातें।
तयौरन्यः पिप्पलं स्वाः द्धत्र्यनष्न अभिचांकषीति।

दो समान आयु वाले मित्र पक्षी (ईष्वर और जीव) एक ही वृक्ष (षरीर) का आलिंगन कर रहे हैं। उसमें एक (जीव स्वादिष्ट पीपल के फल (सांसारिक सुख भोग) का भक्षण करता है। और दूसरा ईष्वर विषय भक्षण उपभोग किये हुए को केवल देखता रहता है।

सौन्दर्य एक सुखद अनुभूति है जो वस्तुओं रंगो रेखाओं आदि की विषेष सामंजस्य स्थिति में अनायास उत्पन्न हो जाती है। वैदिक कालीन मानव भौतिक जीवन का भावुक कलाकार ही नही आत्मा का अथक षिल्पी हैं प्रकृति का सौंदर्य वर्णन केवल मधुर तत्वों तक ही सीमित नही है। वरन वह उग्र और रूद्र रूपों में भी आकर्षण का अनुभव करता है।

मानवीय सौन्दर्यानुभूति अनादिकाल से ही उददाम लालसा से सम्पृक्त हो विविध कलाओं जिसमें साहित्य काव्य एक है– के माध्यम से अन्तष्चेतना को उल्लसित करती आनन्दानुभूति के रूप में प्रवाहित है। वैदिक वांगमय मानवता की शाब्दिक अभिव्यक्ति के सर्व प्राचीन उदाहरण है। वेदों में भी सब से प्राचीन ऋग्वेद पर यदि हम दृष्टि निक्षेप करें तो प्रकृति के विराट उत्क्रोड विहार करता मन्त्र दृष्टार ऋषि अनायास ही सौन्दर्यनुभूति का ललित चित्रण कर कहता है।

'हे सुन्दर मुख वाले अग्निदेव। तुम मान्य तेजस्वी हो। जब तुम सुवर्ण के समान प्रकाषित होते हो तब तुम्हारा स्वरूप शोभन बन जाता है। विद्युत में तुम्हारा तेज अन्तरिक्ष में प्रकट होता है। तुम सूर्य के समान प्रकट हो'।

वैदिक ऋषि प्राकृतिक शक्तियों की उपासना प्राणमयी सत्ताओं के रूप में करते है। और उनके स्वरूप एवं शील का वर्णन करते है। उस समय वे एक प्रकार की विस्मय भावना से भर जाते है। ऋषियों की सम्भ्रमपूर्ण प्रषक्तियों में यह भावना प्रत्यक्ष झलकती हुई दृष्टिगोचर होती है। वैदिक कवि सृष्टि विस्तार की अनन्तता एवं दुर्बोधता से प्रभावित है। और उसके प्रति एक कुतूहल एवं जिज्ञासा तथा विस्मय के भाव से अनुप्राणित है। दिन तथा रात के क्रमषः आवागमन सरिताओं के निरन्तर गतिषील रहने पर जल सन्द्रोह समुन्द्र का निष्चल बने रहना सौन्दर्य मण्डित नित्य नवीन सूर्यो अग्नियों जलों उषाओं इत्यादि की संख्या के विषय में प्रष्न पूछना वैदिक कवि की सौन्दर्य जिज्ञासा का ही परिणाम है।

कल्पर नयाकृति सूर्यासा कत्युषाषा कत्युषिधामा।
नोपस्पिजम वह पितरौ वदामि पृच्छामि वह कव्योः विदमनेकम् ।। [1]

ऋग्वेद के 1/13/7, 1/47/2, 1/48/13, 1/87/6, 2/16/1, 2/33/5, आदि में जहाँ सौन्दर्य प्रदर्षन में ज्योति के प्रति प्रियता दृष्टिगोचर होती है वही सुभग, प्रकृति शब्दों का अर्थ सुन्दर के अर्थ में हुआ है। शोभा के अर्थ में श्री का प्रयोग कुछ सन्त्रों में सूनरों का प्रयोग रमणीय कें अर्थ में 'रण' शब्द के यन्त्रों का प्रयोग हुआ है।

वैदिक काल में सौन्दर्य के प्राकृतिक मानवीय तथा दिव्य स्वरूपों का बहुविध वर्णन हुआ है। उषा, मरूत, सूर्य, पृथ्वी इत्यादि से सम्बन्धित सूत्रों में बाह्य सौन्दर्य के अतिरिक्त ऋषि कवियों ने इन प्राणमयी शक्तियों के आन्तरिक सौन्दर्य की भी व्यन्जना की है और उनके मंगल विधायकषील को भी बलाधात दिया है।

समानी वः आकूतिः समाना हृदयानि वः।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति।।

और

सर्वे भवन्तु सुखिनः।
सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु।
मा कष्चिद् दुःखभाग्भवेत्।।

1. ऋग्वेद – 10.88.18`